International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 261-263

मूल्यहीनता से उपजी अराजकता ('उपसंहार' उपन्यास के संदर्भ में)

पूनम
शोधार्थी, हिंदी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

भौतिकवादी दृष्टि ने पारम्परिक नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों के सामने प्रश्नचिह्न अंकित कर दिया है, जिससे पारम्परिक मूल्यों का विघटन व्यक्ति से लेकर परिवार तथा सामाजिक संबंधों तक में समान रूप से हुआ है तथा पुराने सामाजिक मूल्यों से उत्पन्न विघटन के कारण व्यक्ति–मूल्यों की स्वतंत्र सत्ता भी स्थापित हुई है। 'मूल्य' वर्तमान युग में अत्यधिक महत्वपूर्ण शब्द है जो आज के तीव्रगामी परिवर्तनशील वैचारिक युग में अपने मूल व्युत्पत्तिमूलक अर्थ में अलग–अलग अर्थों में प्रयुक्त होता है। ''मूल्य न तो मशीन द्वारा उत्पादित वस्तु है और न ही वह किसी सरकार द्वारा निर्मित कानून है। मूल्य तो जीवन के प्रति एक गुण है, एक अन्तर्दृष्टि है, एक अवधारणा है, एक दृष्टिकोण है।''[1]

मूल्य समाज की व्यवस्था को बनाए रखने के लिए भी आवश्यक है। मूल्य का उल्लंघन करने से अपराध वृति को प्रश्रय मिलने लगता है। मूल्यों को स्वीकारने तथा उनके अनुकूल व्यवहार करने में समाज सुचारू ढंग से चलता है। जिससे समाज की सुरक्षा, शांति एवं प्रगति संभव है। अतः समाज को सुरक्षा, शांति एवं प्रगति की ओर अग्रसर करने वाले व्यवस्थित एवं निर्धारित सिद्धान्त ही 'मूल्य' कहे जाते हैं। समाज में स्थापित मानदण्ड समयानुसार जब अपनी उपयोगिता देते हैं और नए संदर्भों, परिस्थितियों एवं वातावरण के अनुकूल उनका तालमेल नहीं बैठता तब पुराने मूल्यों के विरोध और नए मूल्यों की स्वीकृति के कारण मूल्य–विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है। समाज में मूल्य विघटन का प्रमुख कारण रूढ़ियों और व्यवस्था में संघर्ष है। संघर्ष के बिना न कोई मूल्य बिगड़ता है न ही बनता है।

सामाजिक प्राणी होने के नाते सामाजिक गतिविधियाँ साहित्यकार की भी चिंता का विषय बन जाती है। काशीनाथ सिंह ने 'उपसंहार' उपन्यास में जीवन में विघटित हो रहे मूल्यों को रेखांकित कर जीवंत अभिव्यक्ति दी है।

काशीनाथ सिंह ने द्वारका में जिस अराजकता और नई पीढ़ी में जिस नैतिक पतन को 'उपसंहार' में उजागर किया है वह वास्तव में भारतीय समाज में बढ़ रही अराजकता व नैतिक पतन को चित्रित करता है। कृष्ण के बेटे चारूदेषण और सेनापति कृतवर्मा में द्वारका के भावी राजा को लेकर बातचीत करते हुए सेनापति का मात्र यह कहना कि अभी द्वारकाधीश कृष्ण एवं युवराज बलराम स्वस्थ है अतः हमें आगामी युवराज पर चर्चा नहीं करनी चाहिए, दारूदेषण का उन्हें चाँटा मार देना बच्चों में अनुशासनहीनता का द्योतक है। कृष्ण का चारूदेषण को अपने सामने उपस्थित होने के लिए तीन–चार बार कहना परन्तु चारूदेषण का उपस्थित न होना नैतिक पतन को ही उजागर करता है। चारूदेषण के इस अभद्र व्यवहार पर कृष्ण की चिंता वास्तव में लेखक की चिंता है जो भारतीय समाज में विघटित होते नैतिक मूल्यों के प्रति किसी भी जागरूक व्यक्ति की हो सकती है – ''हमारे संस्कार ऐसे नहीं थे। हम संबंधों की गरिमा जानते थे, यह भी जानते थे कि क्या उचित है और क्या अनुचित ? ये बाते खत्म हो रही हैं अब। ऐसा क्यों है – हमें यही सोचना है।[2]

काशीनाथ सिंह ने न केवल नैतिक पतन पर चिंता व्यक्त की है बल्कि इस ओर भी संकेत किया है कि भारत का जो स्वर्णिम इतिहास रहा है उसकी शिक्षा बच्चों को दी जाए। समाज का दायित्व बनता है कि हम अपने नैतिक मूल्यों को पुनःस्थापित करें। आज समाज में नैतिक मूल्यों की स्थापना की सबसे अधिक जरूरत है। काशीनाथ सिंह ने मदिरापान जैसी समस्या से निपटने के लिए आमजन को ही आगे आने की प्रेरणा दी है – ''रही बात मदिरापान करके बहकने, गाली–गलौच करने, मारपीट करने की, तो हम यह कह सकते हैं कि अपने घरों में मदिरा तैयार करना रौकें, भट्ठियाँ न जलने दें, मादक वस्तुओं से घरों को बचाएँ।''[3]

भारतीय समाज जिन नैतिक मूल्यों के लिए जाना जाता रहा है वे आज विघटित हो रहे है। आज युवा पीढ़ी अधिक स्वेच्छाचारी होती जा रही है। कृष्ण द्वारा मुक्त कराई गई युवतियों में से तीन युवतियों को कृष्ण के बेटे भद्रकार द्वारा भगा ले जाना नई पीढ़ी की उदण्डता एवं मनमानेपन को उजागर करता है। प्रद्यम्न का अपने पिता के प्रति दृष्टिकोण नैतिक पतन को संकेतिक करता है.

> ''ऐसा भी कोई बाप होता है क्या ?
> मैंने जाना ही नहीं कि बचपन क्या होता है ?
> माँ–बाप का प्यार क्या होता है ?
> उन्हें जब मेरी फिक्र नहीं तो मैं क्यों करूँ उनकी फिक्र ?
> मैं जो कुछ हूँ अपने बलबूते हूँ किसी का अहसान नहीं है मेरे ऊपर।
> उन्हें 'पुरूषोतम', जनार्दन', 'जगदीश्वर' जो कुछ होना है हुआ करें हमारे ठेंगे पर।[4]
> लेखक बच्चों की उदण्डता के लिए माता–पिता एवं बच्चों में अलगाव को एक कारण मानते है।

जाति व्यवस्था ने भारतीय समाज में फूट और कलह पैदा की है जिससे भारतीय समाज पतन के गर्त में जा रहा है। 'जाति–व्यवस्था कोई ईश्वरीय या शाश्वत नियम नहीं है। यह उन स्वार्थी तत्वों द्वारा बनाया गया नियम है जो शक्तिशाली व अधिकार सम्पन्न तथा दूसरों पर अपनी दासता थोपने में समर्थ थे। वह उच्च कहे जाने वाले लोगों के हाथ की तलवार है, जो बहुमत पर राजनीतिक व प्रशासनिक वर्चस्व बनाए रखती है। जाति व वर्ग सामाजिक संकीर्णता और मानसिक बीमारी का सूचक है। जाति व्यवस्था ने भारतीय समाज में जन–भावना का अंत कर दिया हैं। इसने व्यक्ति के गुणों व निष्ठा को जाति में सीमित व कुंठित कर दिया है।''[5]

काशीनाथ सिंह ने जातिगत भेदभाव की त्रासदी को ईश्वर कहे जाने वाले कृष्ण के माध्यम से उठाया है। कृष्ण का मूल संबंध क्षेत्रिय सम्प्रदाय से रहा है। लेकिन क्षेत्रियों ने कृष्ण को कभी क्षेत्रिय

नहीं माना क्योंकि आधपुरुष यदु को शापित होने से इनके क्षेत्रियोचित का लोप हो गया और इन्हें यादव समझा जाने लगा। क्षेत्रियों द्वारा यादवों को निम्न समझा जाता है। क्षेत्रियों के जात्याभिमान का दंश कृष्ण को बार–बार पीड़ित करता रहा। रूक्मणी के विवाह प्रसंग में कृष्ण का क्षेत्रियोचित रीति से हरण करना इस बात की ओर संकेत करता है कि व्यक्ति की पहचान उसकी जाति से नहीं गुणों के आधार पर होना चाहिए। कृष्ण के शब्दों में –

''मैंने उन जाति–अभिमानी, पाखंड़ी, दंभी क्षेत्रियों के दर्प को
विदीर्ण करते हुए कह दिया था कि यह
आनामंत्रित ग्वाला अपनी रूक्मिणी को
लिए जा रहा है जो करना हो, कर लो।''[6]

व्यक्ति को ब्राह्मण, क्षेत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि वर्णों में बाँटकर देखना अनुचित है। समाज द्वारा बनाई गई वर्ण व्यवस्था पर लेखक द्वारा लगाया गया प्रश्नचिह्न आज के बुद्धिजीवी का प्रश्न है जो व्यक्ति को केवल मनुष्य मानने के पक्ष में है

''एक प्रश्न मेरे मन में बराबर गूँजता रहता है
तब भी और अब भी
कि क्या मनुष्य का मनुष्य होना ही काफी नहीं है?
फिर उसे वर्णों में क्यों बाँटा गया।''[7]
वर्ण व्यवस्था का विरोध करते हुए लेखक ने व्यक्ति को ईश्वरत्व प्राप्त

करने की प्रेरणा दी है। आलोच्य उपन्यास में कृष्ण को ईश्वर बनने की चाहत का मूल कारण – ''और रही बात ईश्वर की तो मैं ईश्वर कहो या वासुदेव. . . होना चाहता था क्योंकि उसकी कोई जाति नहीं होती, वर्ण नहीं होता, गोत्र नहीं होता अकेला वही है जो वर्णाश्रमों के बंधनों से मुक्त है।''[8]

महाभारत युद्ध को आधार बनाकर लेखक ने भारतीय राजनीति के वर्तमान चेहरे को बेनकाब किया है। वोट की राजनीति के चलते राजनेता बातें तो प्रजा के हित की करते हैं, किन्तु इनका उद्देश्य केवल सत्ता प्राप्ति ही रहता है। 'उपसंहार' उपन्यास में कृष्ण उन नेताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं जो न्याय एवं धर्म को स्थापित करने की ओट में जनता को युद्ध की आग में झोंक देते हैं। युद्ध में शासक वर्ग को कोई विशेष नुकसान नहीं होता लेकिन आम–जन का जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है। नई सत्ता भी उन उद्देश्यों को स्थापित नहीं कर पाती जिन्हें आधार बनाकर पूर्व सत्ता को चुनौती दी जाती है। स्पष्ट है कि सत्ताधारी जनता के लिए नहीं बल्कि अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए सत्ता हथियाते हैं। महाभारत युद्ध के उपरान्त पाण्डवों के राज्य में जनता को आशा थी कि अब शासन व्यवस्था पूरे न्याय एवं ईमानदारी पर आधारित होगी परन्तु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। महाभारत युद्ध के पश्चात् सबको लगा था हर तरफ अमन शांति होगी लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ बल्कि पाण्डवों के राज्य में अधर्म और अशांति की पराकाष्ठा देखने को मिल रही थी। राज्य में सूखा आया हुआ था और युधिष्ठिर अपनी जिम्मेदारियों से भागते फिर रहे थे। महाभारत युद्ध को अधर्म पर धर्म की जीत मानते है। पाण्डवों ने श्री कृष्ण के मार्गदर्शन मे कौरवों को पराजित किया था लेकिन महाभारत के बाद क्या हुआ था? क्या वाकई इस धर्म युद्ध के बाद शांति और अमन कायम हो गया था? ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। युधिष्ठिर का जनता की समस्याओं के समाधान ढूँढने के बजाय उन्हें धैर्य धारण करने के लिए कहना या तीर्थ–यात्रा पर जाना आधुनिक नेताओं का जनता के प्रति अनुत्तरदायित्व का ही द्योतक है। महाभारत के दौरान श्री कृष्ण ने जो छल किए थे उनकी कीमत उन्हें अपनी नींद और चैन की बलि देकर चुकानी पड़ रही थी। श्री कृष्ण का ये रूप ईश्वरीय अलौकिकता से दूर एक ऐसे मनुष्य का है जिसकी असाधारण उपलब्धियों के पीछे खड़ी विफलताएँ अब एक–एक करके सामने आ रही है। श्री कृष्ण कैसे एक भगवान से विवश इंसान बन गए, इतने विवश हो गए कि अपने राज्य और प्रजा; किसी को भी नहीं बना सके। महाभारत युद्ध के बाद उन्हें ये बाते ताउम्र सालती रही कि वो चाहते तो युद्ध रूकवा सकते थे।

महाभारत युद्ध के उपरान्त पाण्डवों के राज्य में जनता को आशा थी कि अब शासन व्यवस्था पूरे न्याय एवं ईमानदारी पर आधारित होगी परन्तु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में जनता अपना प्रतिनिधि स्वयं चुनती है ताकि शासक सुख–दुःख का भागीदार हो और जीवन–यापन में उन्हें किसी प्रकार की असुविधा न हो। इस संदर्भ में लेखक की टिप्पणी – ''किसी राजा का महल इतनी ऊँचाई पर नहीं होना चाहिए कि वह लोगो का रोना–गाना न सुन सके।''[9] जनता से कटा शासक उनकी समस्याओं को नहीं जान पाता। यदि किसी प्रकार जनता अपनी आवाज उन तक पहुँचा भी दे तो वह नक्कारखाने की तूती बनकर रह जाती है। वास्तव में वर्तमान राजनीति इतनी गिर चुकी है कि नेताओं को जनता के दुःख दर्द से कोई लेना–देना ही नहीं रहा। एक संवेदनशील रचनाकार होने के नाते काशीनाथ सिंह ने सत्ता की वास्तविकता को पाठकों के समक्ष लाने का सफल प्रयास किया है। जनता एवं नेता के संबंध में की गई लेखक की परिकल्पना प्रत्येक गणराज्य की आधारशिला होनी चाहिए – ''गाँव में घूमने का अर्थ है – लोक में घूमना, लोक को जानना, उसकी जरूरतों, उसकी इच्छाओं–आकांक्षाओं से परिचित होना। जो राजा लोक को नहीं जानता। वह अपने राज्य को नहीं जानता।''[10]

उपन्यास में बलराम कृष्ण का विपक्ष रचते है। वे ही थे जो कृष्ण को कुछ कह सकते थे। उनके निर्णयों पर आपत्ति कर सकते थे और फिर द्वारका के युवराज भी तो वे ही थे। कृष्ण ने द्वारका को एक गणतंत्र के रूप में विकसित करना चाहा था जहाँ राजा और प्रजा मिलकर निर्णय ले। महाभारत युद्ध से पूर्व उन्होंने 'सुधर्मा–सभा' बुलाई थी जिसमें युद्ध में द्वारका की भागीदारी का निर्णय होना था और जब बलराम ने इस लड़ाई को कौरवों–पाण्ड़वों का घरेलू मामला कह कर द्वारका को बीच में न पड़ने की सलाह दी तब कृष्ण बोले थे – ''नहीं दाऊ, यह उनका घरेलू मामला नहीं है। यह वस्तुतः धर्म–अधर्म का, न्याय–अन्याय का, सत्–असत् का, प्रकाश–अन्धकार का, ईमानदारी–बेईमानी का मामला है। इतिहास–काल कल हमसे, आपसे, द्वारका से पूछेगा कि जब आर्यावर्त में युद्ध हो रहा था, मार–काट मची थी, आग लगी थी, तब आप कहाँ थे? द्वारका किधर थी? नहीं पूछेगा? और तब क्या जवाब देंगे आप?'' इस पर बलराम ने हँसकर जवाब दिया था – 'किसी भी बात में सिद्धांत गढ़ लेना पुरानी आदत है तुम्हारी।' लेकिन बलराम युद्ध की भावी विभीषिका जानकर विरोध कर रहे थे और उनका विरोध द्वारका की सेना को युद्ध में भेजने पर था – 'सेना दान–दक्षिणा में दी जाने वाली निजी संपत्ति नहीं है। सेना तब के लिए होती है, जब कोई राष्ट्रीय आपदा हो, सीमा पर संकट हो, द्वारका में प्राकृतिक दुर्घटना हो. . .।' इसके बाद वे सभा छोड़कर हिमालय यात्रा पर निकल गए थे। अब जब युद्ध को बीते कई साल हो गए हैं और द्वारका–कृष्ण उस युद्ध की विभीषिका को झेल रहे है तब बलराम, भीम और दुर्योधन के गदा युद्ध को याद करते हुए कहते है कि मैं मारने दौड़ा था लेकिन रूक गया क्योंकि तुम्हारा

इशारा देख लिया था। तब कृष्ण ने कहा – तो मुझे ही मारा होता आपने। बलराम कहते हैं – ''किस–किस अधर्म के लिए मारता मैं? एक–दो हों, तब तो?. . . क्या समझते हो, मैं हिमालय धूनी रमाने गया था? तपस्या करने गया था? उस ऊँचाई से वह सारा कुछ देख–सुन रहा था, जो तुम कुरुक्षेत्र में कर रहे थे। तुम अधर्म की नींव पर धर्म की जर्जर इमारत खड़ी कर रहे थे। कह कर गये थे द्वारका से कि यह अधर्म के विरूद्ध धर्मयुद्ध है, धर्म की स्थापना करनी है। किस धर्म को स्थापित किया? न्याय को? ईमानदारी को? भाईचारे को? प्रेम को? किसकों? प्रेमयोग का ज्ञान देते घूम रहे हो और दादा को पोते से, मित्र को मित्र से, गुरू को शिष्य से और भाई को भाई से मरवा रहे हो! पूरे आर्यावर्त में घूम कर देखा मैंने, ब्राह्मणों, महिलाओं और बच्चों को छोड़कर कोई नहीं बचा। इसे किस धर्म की स्थापना कहेंगे?[11]

कृष्ण द्वारा लिए गए निर्णय का विरोध करवाकर लेखक ने इस बात की ओर संकेत किया है कि जनता के बारे में कोई भी निर्णय लेने से पहले जनता की राय लेना जरूरी है। लेखक ने द्वारका गणराज्य का निर्माण करवाकर 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना को साकार रूप दिया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि हस्तिनापुर एवं द्वारका ही नहीं सम्पूर्ण आर्यावर्त में व्याप्त मानव विरोधी तत्वों के बहाने काशीनाथ सिंह ने भारत ही नहीं अपितु विश्व स्तरीय स्थितियों पर चिंतन मनन करते हुए इस तथ्य को उजागर किया है कि मूल्यहीनता की स्थिति समाज के लिए घातक होती है।

संदर्भ सूची

1. डॉ॰ मोहिनी शर्मा, हिंदी उपन्यास और जीवन मूल्य, पृ॰ 23
2. काशीनाथ सिंह, उपसंहार, पृ॰ 86
3. वही, पृ॰ 87
4. वही, पृ॰ 81
5. उद्घृत, डॉ॰ कुसुम यदुलाल, दलित शिक्षा का परिदृश्य, पृ॰ 28
6. काशीनाथ सिंह, उपसंहार, पृ॰ 66
7. वही, पृ॰ 66
8. वही, पृ॰ 67
9. वही, पृ॰ 18
10. वही, पृ॰ 24
11. वही, पृ॰ 39